

स्त्री ने कराई है और बात है भी सत्य। शिव का पता उमा के सिवाय और कौन दे सकता है? इस कथा में यह बताया है कि जड़ देवता अग्नि, वायु या मनुष्य के इन्द्रिय ब्रह्म को सर्वथा नहीं जान सकते, उसे केवल इन्द्र अर्थात् आत्मा ही जान सकता है और वह भी उमादेवी अर्थात् बुद्धि की सहायता से। बुद्धि को स्त्री के रूप में दिखलाकर यहाँ स्त्री को बड़ा महत्त्व दिया गया है और स्त्रियाँ ऐसे महत्त्व की अधिकारिणी भी हैं। उनकी बुद्धि धर्म-कार्यों में, सूक्ष्म विषयों को समझने में और भक्ति-जैसे पवित्र क्षेत्र में शीघ्र ही अति दूर निकल जाने में बहुत तीव्र होती है, परन्तु यह अत्यन्त शोक की बात है कि दम्भी पुरुषों ने ऐसे पवित्र हृदयों का दुरुपयोग किया है और अपने गुरुडम और नीच वासनाओं के लिए ऐसे कोमल हृदयों में अन्धविश्वास की आग जलाकर उन्हें भस्म कर दिया है इसलिए स्त्रियों को पूरी सावधानी के साथ ऐसे लोगों से बचना चाहिए। स्त्रियों को स्त्रियों द्वारा ही उपदेश मिले तो अच्छा है। स्वामी दयानन्द जी ने कलियुग के ढोंगी गुरुओं की लीलाएँ देखकर ही ऐसे गुरुडम के विरुद्ध आवाज उठाई थी। उसे सर्वदा सामने रखना चाहिए। परन्तु इसका प्रयोजन यह नहीं कि स्त्रियाँ प्रभु-भक्ति से वंचित रखी जाएँ।

मनु ने तो यह कहा है कि—
नास्ति स्त्रीणां पृथग् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥
(मनु. 5.155)

“स्त्रियों के लिए पृथक् यज्ञ-व्रत-उपवास नहीं है। केवल एक पति की सेवा करने से वे परम पद को प्राप्त हो देवताओं द्वारा पूजित होती हैं।”

मनु भगवान् की यह आज्ञा, आजकल के धूर्त गुरुओं को देखें, तो सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होती है। बात है भी सच। जब स्त्रियों ने पति को छोड़कर किन्हीं दूसरों की ही सेवा करनी है और उसी धन्य और जंजाल में पड़े रहना है तो फिर उससे अच्छा है कि अपने पति ही की सेवा की जाए। पति-सेवा की महिमा बहुत बड़ी है। गांधारी ने तो यहाँ तक कह दिया था—

योगेन शक्तिः प्रभवेन्नराणाम्।

पातिव्रतेनापि कुलाङ्गनानाम्॥

“पुरुषों को योग द्वारा शक्ति प्राप्त होती है और कुलाङ्गनाओं (देवियों) को अपने पातिव्रत से।”

वाल्मीकीय रामायण 7.1.8 में यह कहा है—

पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः।

प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः॥

“नारी के लिए पति ही देवता, पति ही बन्धु, पति ही गुरु है।

नित्य प्राणों से भी प्रिय पति का प्रिय कार्य करना और उसी में प्रसन्न रहना स्त्री का स्वाभाविक धर्म है।”

यह सब सत्य है और स्त्रियों को पातिव्रत धर्म में आरुढ़ रखने के लिए यह उपदेश आवश्यक है, परन्तु पति-सेवा के साथ यह भी आवश्यक है कि आत्म-दर्शन के लिए भी कुछ प्रयत्न किया जाए इसीलिए स्वामी दयानन्द जी ने ‘सत्यार्थप्रकाश’ में जहाँ पुरुषों के लिए योगाभ्यास लिखा है, वहाँ स्त्रियों के लिए भी यह आज्ञा दी है—**“स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे।”** और फिर जब आत्म-दर्शन की सामग्री स्त्रियों के लिए मौजूद ही है तो ऐसी अवस्था में उन्हें प्रभु-दर्शन से वंचित

यह सब सत्य है और स्त्रियों को पातिव्रत धर्म में आरुढ़ रखने के लिए यह उपदेश आवश्यक है, परन्तु पति-सेवा के साथ यह भी आवश्यक है कि आत्म-दर्शन के लिए भी कुछ प्रयत्न किया जाए इसीलिए स्वामी दयानन्द जी ने ‘सत्यार्थप्रकाश’ में जहाँ पुरुषों के लिए योगाभ्यास लिखा है, वहाँ स्त्रियों के लिए भी यह आज्ञा दी है—“स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे।” और फिर जब आत्म-दर्शन की सामग्री स्त्रियों के लिए मौजूद ही है तो ऐसी अवस्था में उन्हें प्रभु-दर्शन से वंचित रखना उचित नहीं है। यह सत्य है कि स्त्रियों को अपने पृथक् यज्ञ करने की आवश्यकता नहीं; पुरुष कोई भी यज्ञ करे, साथ स्त्री का होना अनिवार्य है। वह यज्ञ पूर्ण ही नहीं हो सकता जिसमें पति के साथ पत्नी विराजमान न हो। किन्तु, भक्ति-यज्ञ से पृथक् एक ऐसी भावना भी है, जो एक अलौकिक और स्वर्गिक आनन्द का अनुभव करने का अधिकारी बनाती है, और इसको प्राप्त करने का अधिकार सबको है। पुरुष और स्त्री को, बालक और बालिका को, वृद्ध और वृद्धा को, युवक और युवती को, ब्राह्मण और चाण्डाल को, धनी और निर्धन को, सबको यही अधिकार दिया गया है कि जब तुम्हें भगवान् का मन्दिर मिला है तो तुम अपने सांसारिक कर्तव्य करते हुए इस मन्दिर में आने के वास्तविक उद्देश्य को भी पूर्ण करो। और फिर स्त्री और पुरुष के अन्दर कौन है ? वह न स्त्री है न पुरुष-वह केवल आत्मा है।

रखना उचित नहीं है। यह सत्य है कि स्त्रियों को अपने पृथक् यज्ञ करने की आवश्यकता नहीं; पुरुष कोई भी यज्ञ करे, साथ स्त्री का होना अनिवार्य है। वह यज्ञ पूर्ण ही नहीं हो सकता जिसमें पति के साथ पत्नी विराजमान न हो। किन्तु, भक्ति-यज्ञ से पृथक् एक ऐसी भावना भी है, जो एक अलौकिक और स्वर्गिक आनन्द का अनुभव करने का अधिकारी बनाती है, और इसको प्राप्त करने का अधिकार सबको है। पुरुष और स्त्री को, बालक और बालिका को, वृद्ध और वृद्धा को, युवक और युवती को, ब्राह्मण और चाण्डाल को, धनी और निर्धन को, सबको यही अधिकार

दिया गया है कि जब तुम्हें भगवान् का मन्दिर मिला है तो तुम अपने सांसारिक कर्तव्य करते हुए इस मन्दिर में आने के वास्तविक उद्देश्य को भी पूर्ण करो। और फिर स्त्री और पुरुष के अन्दर कौन है ? वह न स्त्री है न पुरुष-वह केवल आत्मा है। देखिये तो सही, वेद भगवान् इस विषय में कितनी सुन्दर बात कहता है—

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं

कुमार उत वा कुमारी।

त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि

त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥

(अथर्व. 10.8.27)

वेद जीवात्मा का वर्णन करता हुआ कहता है—“तू स्त्री और पुरुष भी है, तू कुमार और कुमारी भी है, तुम्हीं वृद्ध होकर लाठी से चलते हो, तुम जन्मते हुए अलग-अलग शक्लोंवाले हो

को 6-7 मास में प्राप्त हो जाता है इसलिए बच्चों के पालन-पोषण तथा गृह-कार्यों से न घबराना चाहिए और न दिल तोड़ना चाहिए, अपितु इन कार्यों को एक तप का साधन समझते हुए प्रभु स्मरण, आत्म-दर्शन और भक्ति का क्षेत्र तैयार करने के निमित्त वही विधि अपनानी चाहिए—पहले ओ३म् और गायत्री-मन्त्र के जाप से प्रारम्भ करना चाहिए। आगे वही विधि है जो पहले लिखी जा चुकी है। हाँ, स्त्रियों को आसन का ध्यान रखना चाहिए। उनके लिए दो ही आसन उपयोगी हैं—पद्म-आसन और सुख-आसन। उन दोनों में से किसी एक का इतना अभ्यास कर लें कि एक ही आसन में साढ़े तीन घण्टे [श्री महात्मा नारायण स्वामी जी का ‘योगरहस्य’ देखिए।] तो बैठ सकें। देर तक एक ही आसन में बैठने से टाँगें सोने लगेंगी, इन्हें सोने दीजिए। ये सुन्न हो जाएँगी, इसकी भी चिन्ता न कीजिए। आगे बढ़कर शरीर भी सुन्न हो जायेगा, इसकी भी चिन्ता नहीं करनी, और साधना को जारी रखना चाहिए।

पति-सेवा और दूसरे गृह-कार्य तो अवश्यमेव करने ही हैं। इनसे भागना नहीं। हाँ, इनके साथ भगवान् का सिमरन भी जारी रखना चाहिए। जिस प्रकार श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा था कि “सब समय में निरन्तर भगवान् का स्मरण भी कर और युद्ध भी कर।” इसी प्रकार स्त्रियों को भी करना चाहिए। एक बहुत सुन्दर उपमा एक कवि ने संसारी लोगों के लिए दी है कि किस प्रकार से इस संसार में रहना चाहिए। वह यह है—

ज्यूँ त्रिया^१ पीहर^२ बसे,

सुरति^३ रहे पियु^४ माहि।

तैसे नर जग में रहे,

हरि को बिसरे नाहि॥

[1. स्त्री, 2. मायके (माता के गृह)

3. ध्यान 4. पति]

संसार के कार्य करो, पति-सेवा भी करो, परन्तु इस उद्देश्य को न भूलो कि उस सब पतियों के भी परम पति के दर्शन के लिए यह शरीर मिला है।

जब विवाह-संस्कार होता है तो कन्या गोभिलीय गृह्यसूत्र का एक मन्त्र पढ़ती है कि मैं आज से पति के मार्ग पर जा रही हूँ ताकि मेरा जीवन सुखी तथा कल्याणकारी हो और पतियों का जो पति परमात्मा है उसके लोक में पहुँच सकूँ। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का वास्तविक उद्देश्य आत्म-दर्शन ही है, इसे सदा अपने समक्ष रखो।

क्रमशः

पदवाक्यप्रमाणज्ञ श्री पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु

● डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री द्वारा लिखित यह लेख धारावाहिक रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। योजनानुसार प्रकाशित हो जाने पर एक ट्रैक के रूप में प्रकाशित किया जायेगा। – सम्पादक

वैदुष्य और विनम्रता का मणिकांचन संयोग

पदवाक्यप्रमाणज्ञ पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी के वैदुष्य और विनम्र स्वभाव का वर्णन करते हुए व्याकरणशास्त्र के प्रख्यात पण्डित डॉ. रामशंकर भट्टाचार्य ने लिखा है—‘प्रधानतः जिज्ञासु जी एवं मीमांसक जी के साहचर्य से मुझमें सम्पूर्ण महाभाष्य के अध्ययन की इच्छा हुई। जिज्ञासु जी और मीमांसक जी से पढ़ने से शब्दशास्त्रीय बातें अत्यन्त स्पष्ट हो जाती हैं। मुझे यह कहने में अणुमात्र संकोच नहीं है कि पाणिनीय व्याकरण के प्रक्रिया अंश में जिज्ञासु जी की असाधारण दक्षता थी। पाणिनीय पद्धति के अनुसार स्वर संचार की प्रक्रिया व्याकरण पढ़ाने के समय काशी में सिखाई नहीं जाती।

इस प्रक्रिया का जो ज्ञान मुझमें है, वह मुझे मीमांसक जी से तथा जिज्ञासु जी से मिला था। उन्हें अनन्यसाधारण विशेषज्ञ माना जाए तो अत्युक्ति न होगी। महाभाष्य की दीपिका टीका (भर्तृहरिकृत) के प्रारम्भिक अंश के सम्पादन में उन्होंने जो संपादकीय टिप्पणियाँ दी हैं, वे उनके अध्ययन की विशालता की सूचक हैं। यदि हो सके तो उनके द्वारा सम्पादित सम्पूर्ण अंश का पुनः प्रकाशन कर देना चाहिए। उनकी यजुर्वेद-विवरण टीका से मुझे सदैव स्वर वैदिक प्रक्रिया समझने में सहायता मिलती रहती है। जिज्ञासु जी की एक और विशिष्टता मैंने स्वामी करपात्री जी द्वारा आयोजित वेद सम्मेलनों में देखी। विपक्षी अर्थात् सनातनी पण्डित के साथ शास्त्रार्थ में वे सदैव शान्त रहकर उत्तर देते थे। वे कभी भी कटु शब्दों का, उपहास-परिहासगमक वाक्यों का उच्चारण नहीं करते थे। उनकी मुख-मुद्रा बिगड़ती नहीं थी। उनकी यह शालीनता पण्डितों के लिए एक अनुकरणीय वस्तु है। एक उच्चकोटि के विद्वान् ने पाणिनि महाविद्यालय वाराणसी के आचार्य पं. विजयपाल जी के सामने कहा था—‘आश्चर्य है जिज्ञासु जी और मीमांसक जी व्याकरण और मीमांसा जैसे नीरस विषयों को जीवनभर कैसे पढ़ते-पढ़ाते रहे हैं।’ महावैयाकरण पं. श्री युधिष्ठिर मीमांसक जी लिखते हैं—‘पाणिनीय व्याकरण में चिरकाल से ‘त्रिमुनि-व्याकरणम्’ (काशिकावृत्ति-2.1.19) की प्रसिद्धि रही है—सूत्रकार पाणिनि, वार्तिककार कात्यायन एवं महाभाष्यकार पतंजलि। जब

पाणिनीय व्याकरण का पठन-पाठनक्रम अष्टाध्यायी-क्रम से लुप्त हो गया और महाभाष्य का पठन-पाठन भी अनावश्यक-सा समझा जाने लगा, ऐसे काल में पाणिनीय व्याकरण के अध्ययन-अध्यापन को पुनः प्रवृत्त करने और महाभाष्य के विलुप्त गौरव को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए विगत वर्षों में तीन ऐसे महापुरुष हुए, जिन्होंने पाणिनीय व्याकरण के पुनः अपने स्वरूप में स्थापित करने के लिए महान् प्रयत्न किया। इनमें प्रथम हैं—गुरुवर परमहंस परिव्राजकाचार्य दण्डी स्वामी विरजानन्द सरस्वती तथा द्वितीय उनके शिष्य परमहंस परिव्राजकाचार्य वैदिक वाङ्मय के समुद्धारक और उसके अध्ययन पर बल देने वाले स्वामी दयानन्द सरस्वती। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदार्थ बोधक वेद-वेदांग आदि समस्त विद्याओं के आकर ग्रन्थों के साथ वेद के अध्ययन की जो पाठ-विधि निर्धारित की उसके अनुसार उस पाठविधि को प्रतिष्ठित करने और व्याकरण का अष्टाध्यायी-क्रम से महाभाष्यांत अध्ययन अध्यापन करने के लिए अपने सम्पूर्ण जीवन को समर्पित करनेवाले तृतीय श्री पूज्य पण्डित ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु। इन तीन महान् व्यक्तियों के प्रयत्न से ‘त्रिमुनिव्याकरणम्’ की प्रसिद्धि एक बार पुनः प्रतिष्ठित हुई। ये तीन मुनि वर्तमानकाल के हैं अर्थात् ‘त्रिमुनिव्याकरणम्’ प्राचीन व अर्वाचीन काल में भी अपने शब्दों में यथावत् व्यवस्थित रहा। ‘पूर्वपाणिनीयाः अपरपाणिनीयाः’ (द्रष्टव्य-काशिका 6.2.104) के समान हम इसे ‘पूर्वत्रिमुनिव्याकरणम्’, ‘अपरत्रिमुनिव्याकरणम्’ के रूप में निरूपित कर सकते हैं।’

श्वेतवस्त्रों में संन्यासी

पूज्य गुरुजी का व्यवहार मधुर, निश्छल और आडम्बर से रहित था। उनके इस प्रकार के व्यवहार के कारण उनकी मैत्री देश भर में बिखरे सैकड़ों विद्वानों (जिनमें संस्कृत के शास्त्रीय वाङ्मय के अतिरिक्त हिन्दी-अंग्रेजी-विज्ञान-राजनीति-अर्थ-धर्म-संस्कृति आदि अनगिनत विषयों के विद्वान् समाविष्ट थे), अधिकारियों, नेताओं, प्राध्यापकों, उद्योगपतियों, संन्यासियों और साधारण जनों से थी। लगभग 200 फाइल वे स्वयं संभालते थे, पत्र व्यवहार स्वयं करते थे।

अपने शिष्यों तथा भक्त जनों द्वारा

अनेकशः पूछे जाने पर भी अपने जन्म स्थान, वर्ण-जाति तथा माता-पिता का नाम उन्होंने कभी नहीं बताया। एक सच्चे संन्यासी जैसा उनका जीवन था, परिव्रजन तो उनके स्वभाव का अंग था। अत्यन्त सादगी भरी वेश-भूषा के साथ ही त्याग और वैराग्य उनमें कूट-कूट कर भरा था। यह एक संयोग की बात थी कि राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित होने के अवसर पर परिचय माँगा गया, जिसे न चाहते हुए भी आपने 1963 के आरम्भ में लिखकर भेजा। आपके निधन के बाद उसकी रफ कॉपी आपके कागजों में मिली। यदि राष्ट्रपति द्वारा परिचय न माँगा गया होता तो जनता इनके जीवन के पूर्वार्द्ध, जन्म-स्थान, माता-पिता तथा वर्ण-जाति ज्ञान से भी अपरिचित ही रहती। राष्ट्रपति सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन् निजी तौर पर आपके वैदुष्य, कार्य और सामाजिक योगदान से भली-भाँति परिचित थे। महामहिम द्वारा अनेकशः आग्रह के पश्चात् ही आप राष्ट्रपति-सम्मान प्राप्त करने के लिए तैयार हुए।

गुरुजी में जातीय अहंकार या पक्षपात लेशमात्र भी नहीं था। यद्यपि वे जन्म से ब्राह्मण थे, तथापि उन्होंने अपने जीवनकाल में कभी भी इस तथ्य को प्रकट नहीं होने दिया। एक बार आवागढ़ (एटा) के राजा (स्यात्-किशनपाल सिंह) ने आर्य विद्वानों को अपने यज्ञ में आमंत्रित किया। आमंत्रण पत्र में जन्मना ब्राह्मण होने के नाते ऋत्विग्-वरण का उल्लेख था। श्रीगुरुजी ने यज्ञ में सम्मिलित होने में असमर्थता प्रकट की, हेतु दिया—‘जन्मना वर्णव्यवस्था वैदिक सिद्धान्त के अनुकूल नहीं है।’ राजा ने अपनी भूल का संशोधन किया और यज्ञ के समय कहा—‘आर्यसमाज में सच्चा ब्राह्मण तो एक ही है—पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु।’ एक और अवसर पर रेलगाड़ी में यात्रा करते समय कुछ सनातनी महानुभाव श्रीगुरुजी के साथ शास्त्रीय शंका-समाधान में व्यापृत रहे। अन्त में उनमें से किसी ने पूछा—‘आपका जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ है? श्रीगुरुजी सरल स्वभाव से उत्तर दिया—जन्म से आपको क्या प्रयोजन है? मैं शास्त्रों का अध्ययन-अध्यापन करता हूँ, इसी से समझ लें। वे महोदय बोले—ठीक है, आप किसी नीच जाति में जन्मे हैं, तथा प्रकट करने में संकोच करते हैं।

श्रीगुरुजी ने सहजभाव से कहा— यह मेरे लिए गौरव की ही बात है कि आपके कथनानुसार नीच कुल में जन्म लेकर भी शास्त्र पढ़े और पढ़ाये। चौधरी चरण सिंह के साथ श्रीगुरुजी का घनिष्ठ परिचय उस समय से था जब वे गाजियाबाद में वकालत करते थे और आर्यसमाज के अधिकारी-सम्भवतः प्रधान थे। वे श्रीगुरुजी का बहुत आदर करते थे, कहते थे कि जीवन में केवल एक सच्चे ब्राह्मण का (पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु जी) दर्शन किया है।

प्रसिद्ध आर्य विद्वान् आचार्य विश्वश्रवाः मात्सर्यवश आपके विरोधी हो गये थे। आर्य महासम्मेलन मेरठ (1951 ई.) में आयोजित-वेद सम्मेलन के गुरुजी अध्यक्ष थे। सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा के मंत्री जी ने आपसे अध्यक्षीय भाषण की प्रार्थना की। तभी आचार्य विश्वश्रवाः जी ने हाथ से माइक छीन लिया और चिल्लाकर बोले—‘ऋषिद्रोही को बोलने नहीं दिया जायेगा। विशाल पाण्डाल श्रोताओं एवं दर्शकों से खचाखच भरा हुआ था और विद्वन्मण्डल मंच की शोभा बढ़ा रहा था, सभी अवाक् रह गये। परन्तु गुरुवर शान्त गम्भीर-प्रसन्न मुद्रा में अविचलित अपने आसन पर विराजमान रहे। वातावरण शान्त होने पर पूज्य गुरुवर अत्यन्त विनीत भारत से संन्यासियों, विद्वानों और आर्य जनता को सम्बोधित करके वेद विषय पर स्वाभाविक रूप से बोलने लगे, मानो कुछ हुआ ही नहीं। उनके विनीत भाव और शिष्ट व्यवहार से सम्पूर्ण सभा बहुत प्रभावित हुई।’ बाद में यही विद्वान् आचार्य विश्वश्रवाः ने गुरुजी को पत्र लिखकर निवेदन किया कि मेरे पुत्र का उपनयन संस्कार आप करा दें। साथ में ब्राह्मण ग्रन्थ का एक वचन भी उद्धृत किया जिसमें यह कहा गया है कि ‘यज्ञोपवीत संस्कार विद्वान् व्यक्ति से ही कराना चाहिए अविद्वान् से नहीं क्योंकि जिसका गुरु अविद्वान् हो वह अन्धकार में ही गिरेगा।’ गुरुजी ने अपनी उदारता का परिचय देते हुए उनके घर जाकर बालक का उपनयन संस्कार प्रसन्नतापूर्वक कराया।

श्रीगुरु जी की यज्ञ-निष्ठा अनुपम थी। अपनी युवावस्था में भी संध्या-अग्निहोत्र का उल्लंघन नहीं होने देते थे। प्रौढावस्था में अपने स्थान पर ही नियमतः इसका अनुष्ठान करते थे और

गतांक से आगे...

उत्पत्ति का विज्ञान क्या है?

● श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

{श्री हरिश्चन्द्र वर्मा जी के अपनी अनन्त यात्रा पर चले जाने के बाद उनके सुपुत्र द्वारा वर्मा जी द्वारा लिखित लेखों की कुछ अप्रकाशित प्रतियाँ 'आर्यजगत्' को भेजी गई थी। समय-समय पर उस सामग्री को आर्यजगत् के पाठकों को परोसा जाता है। 'उत्पत्ति विज्ञान' पर वर्मा जी का लेख धारावाहिक रूप में प्रस्तुत है।—सम्पादक}

ईसा के पूर्व फिलिस्तीन में हिरोद नाम का एक विदेशी शासक राज्य करता था। जब उसने सुना कि यहूदियों का असली राजा उत्पन्न हो चुका है, तब हिरोद बहुत आतंकित हुआ और कंस की तरह उसने चुन-चुनकर इसरायली बच्चों को मरवाना आरम्भ कर दिया। इस भय से यूसुफ और मरियम ईसा को लेकर मिश्र चले गये और हिरोद के मरने पर वे पुनः नजरथ में आ गये। ईसा का बचपन नजरथ में ही बीता। बड़े होने पर वे ईरान, अफगानिस्तान, होकर भारत में आये और काशी, गया, नालन्दा, पुरी, काश्मीर में ब्राह्मणों और बौद्ध गुरुओं के पास शिक्षा ग्रहण करते रहे। तीस वर्ष की आयु में वे अपनी जन्म भूमि पहुँच गये और वहाँ महात्मा जौन से दीक्षा ग्रहण की। उनका धर्म ग्रन्थ 'बाइबिल' था, किन्तु जेरुसलम पहुँचकर उन्होंने, पशुओं के बलिदान तथा धार्मिक पाखण्डों और आडम्बरों का प्रबल विरोध किया जिससे यहूदी धर्मगुरु और शासक सब उनके विरोधी बन गये। उनका एक शिष्य, जूडास उनका विरोधी बन गया और ईसा को पकड़वा दिया। रोमन शासक ने उन्हें बड़ी सजा दी। यद्यपि पाइलेट ने उसे दोषी नहीं माना किन्तु यहूदी धर्मगुरुओं ने बड़ी निर्दयता से मार डाला।

हजरत मोहम्मद ने अरब में हो रहे अत्याचार को देखकर मूर्तिपूजा के विरुद्ध एकेश्वरवाद कुरआन मत निकाला, इस प्रकार जैसे आदि माता-पिता से अनेक संतान होते हैं और उनके गुण, कर्म, स्वभाव एक नहीं होते, उसी प्रकार नाना मुनि, नाना मतों का शाखा प्रशाखा फैल गया।

3500 हजार वर्ष पूर्व ईरान में जर्दुश्त, पौरुषास्य के पुत्र थे और उनके वंश का नाम स्वीतम था। ईरान में उस समय अनेक सामाजिक कुरीतियाँ, पाखंड, आडम्बर फैले हुए थे। जर्दुश्त ने उनमें सुधार लाने के लिये अपना पारसी मत का प्रचार 30 वर्ष की आयु से प्रारम्भ किया था। उन्हें भी कुछ वैदिक सिद्धान्त का मिश्रित अंश प्राप्त हुआ था इसलिये उनके मत में देवता में विश्वास, यज्ञाग्निपूजा, शुभकर्म, पवित्रता, सदाचार, पुनर्जन्म, चार वर्ष कर्म से मानना आदि था

सारांश यह कि—वैदिक अल्पज्ञों

के सम्पर्क से कुछ जर्दुश्त को प्राप्त हुआ। जर्दुश्त—अर्थात् पारसी मत का कुछ अंश और भारतीय मतों का कुछ प्रभाव 'ईसा' पर पड़ा जिनमें 'बाइबिल' की रचना हुई। इन दोनों के सिद्धान्त और अपने अरब देश की सामाजिक कुरीतियों को देखकर 'हजरत मोहम्मद ने कुरआन' की रचना की। इस प्रकार एक मत एक दूसरे से सम्बन्धित है।

तात्पर्य यह कि—जिस प्रकार अति प्राचीन काल आर्यावर्त के भारतीय इतिहास को बिगड़ने का कारण वेदों के भाष्यकार, वेद व्याकरण के अनभिज्ञ लोग थे जिनके अनर्थों से विदेशी इतिहासकारों ने आर्यों को अनार्य की संज्ञा दी, उसी प्रकार वेदों के अनर्थ से अनेक अवैदिक मत को भारत एवं विदेशों में धर्म के रूप में मानने लगे। अतः कुसंस्कार फैल गया, विशेषकर 'कुरवाती और बलि प्रथा।' इसके पहिले सती प्रथा थी। 'राजाराममोहनराय के प्रयत्न से 'लडउइलम विन्टिंग' ने बन्द करा दिया। किन्तु गौ हत्या, और 'बकरा बलि बन्द नहीं हुआ। जादू—टोना, प्रेतात्मा, मूर्तिपूजा चलता रहा।

सन् 1824 में ईश्वर की कृपा दृष्टि हुई जब ऋषि दयानन्द ने देखा, अरे यह तो वेदों के प्रति महाघोर अन्याय हुआ है। इन्हीं अनर्थों के कारण भारतीय इतिहास और कुसंस्कार सब जगह फैल गया, तब उन्होंने वेदों के व्याकरण को भलीभाँति जानकर, उन (वेदों) के सत्यार्थ को प्रकट कर दिया। पश्चात् जो शेष था उसे उन्हीं के आधार पर आर्य विद्वानों ने उसे पूरा कर दिया जिससे विश्व को ज्ञात हो गया कि वेद वास्तव में विद्या की पुस्तक है। उसमें न किसी का इतिहास है, न बहुदेववाद, न जादू—टोना, न पशुयज्ञ, न पशुबलि और न प्रतिमा पूजन, उसमें तो ईश्वर, जीव और प्रकृति तथा विविध विद्याओं का बीजात्मक ज्ञान है।

ऋषि दयानन्द महान योगी पुरुष थे, अल्पसमय में सारे वैदिक साहित्य का अध्ययन कर लिया था। सत्य—असत्य को समझने के लिये 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना कर दी। पूजा किस की करनी चाहिये, इस सम्बन्ध में 'सन्ध्योपासना' और पतंजलि ऋषि के अनुसार अष्टांगयोग=योगाभ्यास करने के लिये सबको सही मार्ग बताये। वायु शोधन के लिये, सामग्रियों से यज्ञ करने के

लिये उपदेश दिये। यदि ऋषिदयानन्द कुछ और समय तक रहते तो भारतीय इतिहास का पन्ना ही बदल देते।

ऋषि का अंतिम वाक्य था—“हे ईश्वर तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छापूर्ण हो।” प्राणायाम द्वारा स्वयं को ब्रह्मानन्द में मुस्कराते हुए मुक्त कर दिया, [यह मोक्षप्राप्ति, कार्तिक अमावस्या सम्बत् 1940 (30 अक्टूबर 1883) को सायं 6 बजे हुआ था।]

भारतीय योग और प्राणायाम

वर्तमान में 2003 से केवल 5 वर्षों में स्वामी रामदेव, 'पतंजलि, शास्त्र' के अनुसार लाखों ही नहीं करोड़ों लोगों को सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी लोगों को योग, आसन, प्राणायाम सिखाकर सभी प्रकार की बीमारियों का इलाज कर रहे हैं, जिससे मानवता का बहुत उपकार हो रहा है। साथ ही आयुर्वेदिक औषधियाँ भी जो उनके द्वारा प्रस्तुत हैं, उनसे सबको लाभ पहुँच रहा है।

इसी प्रकार सन् 1960 से आचार्य पं. वीरसेन वेदश्रमी (इन्दौर—'म.प्र' के) वैदिक यज्ञ विज्ञान द्वारा वे अनेक स्थानों में **वृष्टिकारक एवं वृष्टि रोधक सोमादि यज्ञ** किये थे और उनके यज्ञों से अनेक रोगी अच्छे हो गये थे। पेड़—पौधों पर भी यज्ञ का अच्छा प्रभाव पड़ा था। उनका स्वर्गवास 22 दिसम्बर 1987 को हुआ था

सन् 1998 के लगभग मैंने स्वयं देखा था 'कलकत्ता' दूरदर्शन पर—एक व्यक्ति 'प्राणायाम' के द्वारा तालाब के जलपर चल रहा था, जैसे लोग जमीन पर चलते हैं। यदि वह और साधना करे तो 'उदान' वायु को वश में करके प्राणायाम द्वारा स्वयं को और हल्का करके ऊपर उठा सकता है। क्या पानी पर चलना, यहाँ वैज्ञानिकों के लिये आश्चर्य की बात नहीं है? (बाल ब्रह्मचारी—आदर्श साधक श्री अखिलानन्द जी झरिया) [एक बार इनका शिष्य इनके दैनिक यज्ञ में, दो दिन नहीं आया। तीसरे दिन आया तो साधक जी ने पूछा कि तुम दो दिन नहीं आये, क्यों? शिष्य ने उत्तर दिया कि हमारे बच्चा को बहुत ज्वर है, उन्होंने कहा कि कल प्रातः हवन के समय बच्चे को ले आना। वही हुआ कम्बल से ढाँककर बच्चे को ले आया और उनके सामने लिटा दिया, साधक, जी ने हवन के बाद कम्बल को हटाया

और हाथ को ऊपर से नीचे स्पर्श किया, बालक के शरीर से ज्वर गायब हो गया। यह आध्यात्मिक शक्ति की साधना थी।]

दि. 27.10.2007 को रात 7 बजे दूरदर्शन (शाबश इण्डिया प्रोग्राम) में 'हरिपुर (उ.प्र) के 'ललन' नामक साधक, गड़ढे के भीतर प्रवेश किया, और ऊपर से ढँक दिया गया। वायु प्रवेश का कहीं सुराख नहीं था। वे 36 घण्टे तक समाधि अवस्था में रहे। जब उन्हें बाहर निकाला गया, तो 15 मिनट बाद पूर्वावस्था में आकर आँखें खोले (हाथ पैरों के तलवे मालिश किये गये थे) इसके पूर्व उनसे पूछा गया था, उन्होंने कहा इसका मूल कारण 'प्राणायाम' है।

एक प्राणायाम अभ्यासी को 30 वर्ष पहिले प्रदर्शनी के लिये, मुरारई बुलाया गया था। हम लोग प्रातः तीन व्यक्ति बाहर भ्रमण के लिये गये थे, तो उनसे भेंट हो गई। वे बोले, “मेरा शरीर अभी पत्थर जैसा है।” हम लोगों ने देखा और उनका शरीर दबाया तो बिल्कुल पत्थर जैसा था। जिस अंग को दबाया गया वह अंग पत्थर जैसा बन गया था, एक सूई भी नहीं घुस सकती थी। फिर उन्होंने भ्रामरी ध्वनि के साथ रेचक क्रिया करके समस्त शरीर को नरम कर दिया। वे हमारे यहाँ रुके थे, एक दिन के लिये। मैंने पूछा यह शरीर को पत्थर किस प्राणायाम के द्वारा किया जाता है। उन्होंने कहा, “एक विशेष क्रिया द्वारा अभ्यास करना होता है।” मैंने कहा कुछ तो बतलाइये, तो उन्होंने केवल पेट को पत्थर जैसा करने को बताया, जो ध्वनि 'उज्जाई' जैसे रुक—रुक कर पेट में वायु भरा जाता है, भर जाने पर पेट पत्थर जैसा हो जाता है, श्वास स्वाभाविक चलता ही रहता है। पुनः पेट से उस वायु को निकालने के लिये श्श्र् ध्वनि के साथ रेचक कर देने से पेट बिल्कुल नरम हो जाता है।

इसी प्राणायाम के द्वारा अभ्यासी लोग शरीर को पत्थर बनाकर मोटरगाड़ी के नीचे सोकर पार करा देते हैं। इसी प्राणायाम शक्ति से गाड़ी खींच लेते हैं। इसी प्राणायाम द्वारा एक बंगाली ने अपने ग्राम के तालाब में पानी के भीतर एक घंटे से अधिक समय तक बैठा रहता था वह, इसलिये उसकी

गतांक से आगे...

आगे क्षत्रिय के गुण कर्म स्वभाव बताते हुए—पहिले मनुस्मृति का श्लोक—

20. 'प्रजानां रक्षणं दानम्' आदि देकर नीचे 'गीता 18.43 का।'

शौर्य तेजो धृतिर्दाक्ष्यं, युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च, क्षत्रकर्म स्वभावजम्॥

सत्यार्थ प्रकाश में गीता के श्लोकों का प्रयोग इस प्रकार है—

21. सत्यार्थ प्रकाश के आरम्भ की भूमिका में ही—'यत्तदग्रे विषमिव, परिणामेऽमृतोपमम्॥' गीता 18. 37 यह श्लोकार्ध दिया है और इस श्लोक को लिखकर ऋषि ने इसके नीचे लिखा है कि—यह गीता का श्लोक है।

22. एक श्लोक गीता का सत्यार्थ प्रकाश के अष्टम समुल्लास में अत्यावश्यक विषय में दिया है वह इस प्रकार है—

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

गीता 2.16

अर्थात् असत् वस्तु का कभी भाव नहीं होता और सत् पदार्थ का कभी अभाव नहीं होता है इन दोनों बातों को तत्त्वदर्शियों ने जान लिया है।

'यत्तदग्रे विषमिव'— इस श्लोक के विषय में एक गीता विरोधी सज्जन ने लिखा कि— इससे यह तात्पर्य निकालना कि ऋषि ने सत्यार्थ प्रकाश लिखने की प्रेरणा गीता से ली, एक मिथ्या कल्पना है।

मैंने यह बात कहीं भी नहीं लिखी कि ऋषि ने गीता से ही सत्यार्थ प्रकाश लिखने की प्रेरणा ली। पर उनको अपने लिखे उद्धरण को पढ़ना और विचारना चाहिये था, जो उन्होंने 'ऋषि दयानन्द और गीता' नामक पुस्तक के पृष्ठ 14 पर सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में से दिया है—

"यह बड़ा दृढ़ निश्चय है कि— 'यत्तदग्रे विषमिव परिणामे अमृतोपमम्।' (यह गीता का वचन है) इसका अभिप्राय यह है कि विद्या और धर्म प्राप्ति के कर्म हैं वे प्रथम करने में विष के तुल्य और पश्चात् अमृत के सदृश होते हैं। ऐसी बातों को चित्त में धरके मैंने इस ग्रन्थ को लिखा है।"

इस श्लोक के विषय में उन्होंने यह भी लिखा कि यह गीता की ही एक मात्र धरोहर नहीं है। उनका और किसी का भी यह कहना कि यह गीता की एक मात्र धरोहर नहीं है सर्वथा असम्बन्ध और अप्रासंगिक है क्योंकि यह प्रश्न ही नहीं है कि—कौन बात किसकी धरोहर है, प्रश्न तो यह है कि गीता के वचनों को ऋषि ने लिखा है या नहीं।

गीता और महर्षि दयानन्द

● अमर स्वामी

'नासतो विद्यते भावो.' इस श्लोक पर भी आपने ऐसी ही अनावश्यक बात लिखी है कि— इस पर गीता का एकाधिकार नहीं, प्रश्न यहाँ यह नहीं है कि इन बातों पर एकाधिकार गीता का है कि नहीं या यह एक मात्र गीता की धरोहर है कि—नहीं? प्रश्न यहाँ केवल यह है कि ऋषि दयानन्द जी गीता के श्लोकों का प्रयोग प्रमाण रूप में करते थे कि नहीं, सो स्पष्ट है कि गीता के वचनों का प्रमाण रूप से प्रयोग वे करते थे, इसके 22 प्रमाण यहाँ तक दिये जा चुके हैं आगे और भी देखिये॥

23. सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में—ऋषि ने संस्कार विधि की भाँति ही ब्राह्मण के गुण, कर्म, स्वभाव बताने के लिये—मनुस्मृति और गीता के—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥

मनु 1.88

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं, ब्रह्मकर्म स्वभावजम्।

गीता 18.42

दोनों के श्लोक इकट्ठे लिखे और क्षत्रिय के गुण कर्म बताने के लिए भी मनुस्मृति और गीता के श्लोक इकट्ठे लिखे यथा—

24. प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वनासक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥

मनु. 1.89

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षत्रकर्म स्वभावजम्॥

गीता 18.43

दोनों के श्लोकों को मिलाकर लिखा और दोनों को एक—दूसरे के पूरक समझ कर दोनों श्लोकों का मिलाकर ही अर्थ लिखा, इससे स्पष्ट है कि ऋषि ने यहाँ दोनों के श्लोकों को समान रूप से आवश्यक तथा समान रूप से प्रमाण माना और प्रकट किया है।

ऋषि की ऋषिदृष्टि या आर्ष दृष्टि थी जो यथार्थ देखती थी और इन अहम्मन्थों की अनार्ष दृष्टियाँ हैं। दुःख की बात यह है कि ये लोग न केवल अपने आपको आर्यसमाज के सब पंडितों से बड़ा पंडित, सबसे बड़ा बुद्धिमान् तथा सबसे बड़ा सिद्धान्तवादी जताते हैं प्रत्युत ऋषि दयानन्द जी से भी बड़ा विद्वान् और विचारशील मानते और अपने लेखों से ऐसा ही प्रकट करते हैं।

आप पहिले भी पढ़ चुके हैं कि—मिर्जापुर के वैरागी महंत बालकृष्ण

दास को उसके यह मानने पर कि गीता प्रक्षिप्त है ऋषि ने शास्त्रार्थ के लिए ललकारा और बलपूर्वक कहा कि गीता प्रक्षिप्त नहीं है और ये पण्डितम्मन्य कि जो सम्पूर्ण गीता को प्रक्षिप्त मानते हैं। जब महन्त बालकृष्ण दास का साहस ऋषि के साथ शास्त्रार्थ करने का नहीं हुआ था तब ये लोग होते तो ये लोग ऋषि को परास्त करने का शायद दुस्साहस करते।

बड़ा भारी आश्चर्य है कि ऋषि की मान्यता के विरुद्ध ये लोग लिखते और कहते हैं और आर्यसमाज के सारे विद्वानों से अपने आप को ऋषि का बड़ा भक्त और अपने को बहुत बड़ा अनुयायी प्रकट करते हैं।

ऋषि दयानन्द जी के पीछे—उनके शिष्य पंडित भीमसेन जी, पं. भूमित्र शर्मा जी, सामवेद भाष्यकार, पंडित तुलसीराम जी स्वामी, सिद्धान्त मूर्ति तार्किक शिरोमणि स्वामी दर्शनानन्द जी, ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी, दर्शनों और उपनिषदों के भाष्यकार महामहोपाध्याय पं. आर्यमुनि जी, अनेक ग्रन्थों के टीकाकार पं. राजाराम जी शास्त्री, आचार्य पंडित मुक्तिराम जी उपाध्याय (स्वामी आत्मानन्द जी), आचार्य नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ, विद्याभास्कर पं. रामावतार जी शास्त्री, अनेक दर्शनों के भाष्यकार पं. उदयवीर जी शास्त्री सांख्य वेदान्तादि तीर्थ, शास्त्रार्थ महारथी पं. बुद्धदेव जी विद्यालंकार (स्वामी समर्पणानन्द जी), वेद भाष्यकार पंडित सातवलेकर जी, शास्त्रार्थ महारथी पं. बुद्धदेव जी मीरपुरी, शास्त्रार्थ महारथी पं. बिहारीलाल जी शास्त्री काव्यतीर्थ, पं. सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार, (पूर्व उपकुलपति विश्वविद्यालय गुरुकुल कांगड़ी), त्यागमूर्ति महात्मा हंसराज जी, देवतास्वरूप भाई परमानन्द जी, तपोमूर्ति पं. ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, रिसर्च स्कालर पं. भगवद्धत जी, पं. रामावतार जी पंचतीर्थ, आचार्य पं. रामानन्द जी शास्त्री, महापण्डित रामगोपाल जी शास्त्री वैद्य, पं. कृष्णचन्द जी विद्यालंकार, वर्तमान संसद् सदस्य पं. शिवकुमार जी शास्त्री, प्रसिद्ध गवेषक पं. शिवपूजन सिंह जी एम.ए., पं. रामस्वरूप जी शास्त्री काव्यतीर्थ, कविरत्न डा. पं. हरिशंकर जी शर्मा पद्मभूषण आदि—आदि सिद्धान्तवादी और महाविद्वान् गीता के भाष्यकार और प्रशंसक रहे हैं।

एक गीता विरोधी सज्जन की

अनूठी कल्पना—

सत्यार्थ प्रकाश में ब्राह्मण के लक्षणों में— शमो दमः आदि और क्षत्रिय के लक्षणों में—शौर्य तेजो. आदि श्लोकों के प्रयोग पर "ऋषि दयानन्द और गीता" नामक पुस्तक के पृष्ठ 15 पर लिखा है कि 'गीता को वेद पठन, यज्ञ—याग और दान, इन तीनों कर्मों के प्रति उपेक्षा स्पष्ट है जिसकी पूर्ति के लिये ऋषि ने मनु के उपर्युक्त श्लोक को देना आवश्यक समझा।' इससे ऋषि की दृष्टि में गीता का कोई मान न होकर उसकी हेयता और वर्णधर्म की त्रुटिपूर्ण व्याख्या ही प्रकट होती है।

श्रीमान् जी की यह कल्पना सर्वथा उलटी है, उनके लेख का भाव ऐसा निकलता है कि मानो ऋषि किसी कारण के आग्रह आदि से गीता के इन श्लोकों का अर्थ लिख रहे थे, उन श्लोकों में वर्णधर्म की त्रुटि पूर्ण व्याख्या थी, इसलिये मनु के श्लोकों को लिखकर वर्णधर्म की पूरी व्याख्या कर दी।

सत्यार्थप्रकाश में सर्वथा इसके विपरीत बात है। ऋषि चारों वर्णों के कर्तव्य, कर्म और गुण, कर्म, स्वभाव बताने के लिये पहिले मनुस्मृति का श्लोक दिया (यह नहीं कि—पहिले गीता का श्लोक दिया और उसमें त्रुटि देखकर मनु का श्लोक दिया हो। मनु का श्लोक देने के पीछे ब्राह्मण वर्ण के पूरे गुण) स्वभाव बताने के लिये गीता का श्लोक देने की आवश्यकता समझी, तब गीता का श्लोक दिया और दोनों को मिलाकर अर्थ करते हुए लिखा कि— "ब्राह्मण को पढ़ना—पढ़ाना, यज्ञ करना, दान देना—लेना, ये छःकर्म हैं। आगे शम, दम, तप, शौच, शान्ति, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य (गीता में बताये) इनको मिलाकर ऋषि ने लिखा ये पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्यों में अवश्य होने चाहिएँ।

इसी प्रकार क्षत्रिय के गुण, कर्म, स्वभाव बताते हुए पहिले मनुस्मृति का श्लोक दिया।

प्रजानां रक्षणं दानं इज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च, क्षत्रियस्य समासतः॥

परन्तु क्षत्रिय के पूरे गुण, कर्म, स्वभाव बताने के लिये इसके आगे गीता का श्लोक दिया—

शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं, युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षत्रकर्म स्वभावजम्॥

स्वामी जी महाराज ने इन दोनों (मनुस्मृति और गीता के श्लोकों) का अर्थ करते हुए लिखा कि न्याय से प्रजा की रक्षा, दान इज्या=अग्निहोत्र आदि का करना वा कराना अध्ययन, विषयों

गतांक से आगे...

मानव-निर्माण में वैदिक मूल्यों का समावेश: एक विवेचन

● प्रो. धर्मेन्द्र कुमार

ई प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री श्री अरविन्द के विचारानुसार ज्ञान, भक्ति और निष्काम कर्म आर्य शिक्षा के मूल तत्त्व हैं। हमारा उद्देश्य होना चाहिए ऐसी उपयुक्त शिक्षा देना, जिससे भावी संतान ज्ञानी, सत्यनिष्ठ और विनयी हो। ईश्वर के लिए, मानवता के लिए, देश के लिए, दूसरों के लिए और इन सब में अपने आपको जीवित रखने के लिए वैदिक मूल्यों और विचारों को शिक्षा में अवश्य स्थान देना चाहिए। इसके लिए ऋषियों ने हमें सूक्ष्मातिसूक्ष्म सूत्र निर्देश किए हैं, जो समस्त संसार के शिक्षा-सूत्रों में प्रासंगिक हो सकते हैं। वैदिक मूल्यों, विचारों एवं आदर्शों से सादगी, एकरूपता, समरसता जीवन में आ सकती है। आज भी वे आदर्श सिद्धान्त हमारे सामने उपस्थित हैं जिनको बार-बार आज के दीक्षान्त समारोहों में पढ़ा जाता है। वे उद्देश्य, लक्ष्य, तैत्तिरीय उपनिषद् में प्रतिपादित हैं—

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च। तपश्च, दमश्च, शमश्च, अग्नयश्च, अग्निहोत्रं च, अतिथियश्च, मानुषं च, प्रजा च, प्रजनश्च प्रजातिश्च। सबके साथ 'स्वाध्यायप्रवचने च' लगा हुआ है।

अभिप्राय यह है कि 'ऋत' अर्थात् सृष्टि के नियमों को यानी विज्ञान (Science) को पढ़ो-पढ़ाओ। स्वाध्याय कहते हैं—स्वयं पढ़ने को एवं प्रवचन कहते हैं—दूसरों को पढ़ाने को। तप कहते हैं—इन्द्रियों को वश में रखते हुए पढ़ने-पढ़ाने को। अग्नि शक्ति Power अर्थात् भौतिक विज्ञान एवं इंजीनियरिंग को पढ़ो-पढ़ाओ। अग्निहोत्र को करते हुए पढ़ो-पढ़ाओ। अतिथि की सेवा करते हुए, मनुष्य मात्र के कल्याण पर विचार करते हुए प्रजा अर्थात् सर्वसाधारण के हित का ध्यान करते हुए, प्रजनन अर्थात् सन्तान वृद्धि की समस्याओं पर विचार करते हुए सत्य, तप पर विचार करते हुए पढ़ो और पढ़ाओ। स्वाध्याय से मस्तिष्क-वृद्धि के साथ-साथ आत्मिक उन्नति भी होती है। जैसा मन सोचता है, वैसा बोलता है, जैसा बोलता है, वैसा करता है। जहाँ पठन-पाठन की क्रिया नहीं है, वहाँ पैतृक अनुभव न प्राप्त होने से क्रमशः ज्ञानवृद्धि रुक जाती है, यही ऋषि ऋण है। जो तीन ऋणों में से एक है, जिसके पालनार्थ हम यज्ञोपवीत धारण करते हैं। अतः सबको स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए। स्वाध्याय का अर्थ है, नए-नए ग्रन्थों को खोज-खोज

कर उन्हें पढ़ते रहना और अपने ज्ञान को बढ़ाते रहना। इसको वर्तमान में Continuing Education के नाम से जाना जाता है। स्वाध्याय का दूसरा अर्थ है 'स्व' का, अपने आपका अध्ययन करना 'आत्मानं विद्धि' आत्म-अध्ययन Self Study द्वारा अपने जीवन का लेखा-जोखा करते रहना। इस प्रकार ऋत के साथ-साथ सत्य का पालन तथा प्रवचन करना भी आवश्यक है।

इसी प्रकार यम और नियम के द्वारा भी समानता व एकरूपता शिक्षा में अनिवार्य अंग हैं। 'यम' से तात्पर्य है—बाह्य विषयों की ओर से अपने आपको निवृत्त करना अर्थात् अपने आपको संयत या नियन्त्रित करना। सामाजिक व्यवहार में व्यक्ति के लिए निर्देशक सिद्धान्तों का पालन करना आवश्यक है। वे 'यम' के अन्तर्गत आते हैं—अहिंसा—सत्य—अस्तेय—ब्रह्मचर्य—अपरिग्रह यमाः। इसी प्रकार नियम—शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर—प्रणिधान आदि के द्वारा व्यक्ति आत्म-अनुशासित एवं संयमित जीवन व्यतीत कर सकता है। ये यम और नियम सार्वत्रिक, सार्वकालिक, सार्वभौमिक एवं सार्वदेशिक हैं। ये सब जगह लागू होते हैं। अतः ऋषि कहता है—'एताः जातिदेशकालसमयानवच्छिन्ना सार्वभौमा महाव्रतम्' कहकर संसार सुख और शान्ति को आसानी से प्राप्त कर सकता है। समस्त संसार के मानवों को सार्वभौम महाव्रत में दीक्षित किया जाना वैदिक विचारों के माध्यम से ही सम्भव है। महर्षि मनु के अनुसार—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं

शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोध

दशकं धर्मलक्षणम्।।

ये धर्म के दस लक्षण बताए हैं। ये लक्षण सर्वत्र लागू होते हैं। सम्भवतः इसीलिए ऋषियों एवं धर्मग्रन्थों ने दैशिक दृष्टि को तुच्छ समझते हुए मानवमात्र को भाईबन्धु के रूप में ही पहचाना है। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः', 'पृथिव्यै अकरं नमः', 'नमो मात्रे पृथिव्यै', आदि पृथिवी-सूक्त के वैदिक संदेश को एक सार्वभौम शाश्वत धर्म के रूप में संसार के सब संस्थाओं, शिक्षालयों, धर्मस्थानों में गर्व से रख सकते हैं—

कोई भी मत-मतान्तर इससे उच्च रूप में नेतृत्व न दे सकेगा। शब्द स्पष्ट है—सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्मयज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।

ऐसे अत्यन्त महत्त्व के सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि में वैदिक आदर्शों और भावनाओं का उदात्त और उदार होना स्वाभाविक ही है, यही कारण है कि वेद को हम विश्वबन्धुत्व, विश्वशान्ति, समष्टिभावना, भद्रभावना, आशावाद, निर्भयता, श्रद्धा—सामंजस्य के महान् आदर्शों और उदात्त भावनाओं से ओतप्रोत पाते हैं। वेद में 'मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे' 'पुमान्पुमासं परि पातु विश्वतः' (ऋग्वेद 6.75.14) जैसे विश्वबन्धुत्व और 'शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु' जैसे विश्वशान्ति के भाव भरे पड़े हैं।

समष्टि भावना—वैदिक प्रार्थनाओं की एक विशेषता यह है कि वे प्रायः बहुवचन में होती हैं। धियो यो नः प्रचोदयात्, 'यद् भद्रं तन्न आसुव'। 'अग्ने नय सुपथा' इत्यादि मंत्रों में बहुवचनों में ही प्रार्थनाएँ की गई हैं। किसी भी समाज की उन्नति तथा रक्षा के लिए यह समष्टिभावना कितनी आवश्यक है, इसको सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। वैदिक साहित्य आशावाद के ओजपूर्ण भावों से परिपूर्ण है। 'ओजोऽस्योजो मयि धेहि'। 'अदीना स्याम शरदः शतम्।' 'अस्माकं सन्त्वाशिषः' जैसी प्रार्थनाएँ आशावाद की ही समुज्ज्वल प्रतीक हैं। सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा

इस प्रकार वैदिक परम्पराएँ शाश्वत हैं। हमें इन परम्पराओं को अपने जीवन में अवश्य स्थान प्रदान करना चाहिए। हमारी अपनी संस्कृति पर हमें स्वाभिमान होना चाहिए। यह वही संस्कृति है, जो अनादि है—'सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा।' इस संस्कृति से सम्बन्धित कुछ शब्द 31 जनवरी 1951 को सरदार पटेल ने कहे थे अहमदाबाद के विद्यार्थियों के समक्ष— "We must follow our culture our own civilisation, we can not borrow the very element of life from others, our life is essentially different form that of foreign countries.

अर्थात् हमें अपनी ही संस्कृति को अपनाना चाहिए, अपनी ही सभ्यता को, हम अपने जीवन के लिए दूसरों की विचारधारा की भीख नहीं माँग सकते। हमारा जीवन विदेशियों की अपेक्षा सर्वथा भिन्न है।

वेद में संस्कृति के लिए एक शब्द 'विश्ववारा' आता है। अर्थात् सबसे श्रेष्ठ सम्पूर्ण दोषों को हटाने वाली और

सुन्दरता प्रतिपादित करने वाली, जिसके द्वारा कोई सुन्दर वस्तु बनायी जाए तो वह सुन्दर संस्कृति कहलाती है। संसार पर दृष्टि डालकर देखिए कि सामने रखे जो इस कसौटी पर पूरी उतर सके। भारत को अनेक वर्षों तक इसी संस्कृति ने सुखी, सुन्दर तथा शान्तिमय बनाए रखा और यदि संसार फिर सुखी होना चाहता है तो इसी संस्कृति को पूरे विश्व को स्वीकार करना होगा।

वैदिक संस्कृति जहाँ भौतिकता का मार्ग प्रशस्त करती है, वहाँ आध्यात्मिक मार्ग पर भी चलती है। यदि कोई कहे कि भोगवाद और त्यागवाद साथ-साथ कैसे चल सकते हैं। इसके लिए वैदिक सन्देश समान हैं। जहाँ 'वयं स्याम पतयो रयीणाम्' का संदेश दिया गया है। वहीं 'तेनत्यक्तेन भुज्जीथा' या 'न कर्म लिप्यते नरे' जैसा पाठ भी उपदेश रूप में दिया गया है। यह है संस्कृति, जिसका वेद आदेश देता है। यही संस्कृति मानवता लाने वाली है। आज संसार इसलिए दुःखी है कि मानव मानव नहीं बन रहा, अपितु दानव बन गया है। इस मानवता की आधारशिला वेद ही है इसलिए वेद का आदेश है मनुष्य मात्र को 'मनुर्भव' ऐ मनुष्य तू पहले मानव बन। दूसरे के सुख-दुःख को अपना समझने का प्रयत्न कर। प्राणी मात्र को पीड़ा, दुःख, कष्ट मत पहुँचा। इसी मानवता का उपदेश वेद भगवान् द्वारा दिया गया है। हम उठें, जागें, फिर से वैदिक संस्कृति को अपना कर सकल संसार को मानवता का पाठ पढ़ाएँ।

यदि हम अपने जीवन के आध्यात्मिक पार्श्व की उपेक्षा करेंगे तो अवश्य ही हम राक्षस (दानव) बन जाएँगे। 'साक्षरो विपरीतत्वे राक्षसो भवति ध्रुवम्' वैदिक ऋषियों को ही इस बात का श्रेय है कि उन्होंने जीवन के समस्त पार्श्वों का अध्ययन किया और एक समन्वय तक पहुँचे। ऋषियों का यह विश्वास था कि जगत् की अधिकांश समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। यदि जीवन की समीक्षा अनासक्त रूप में की जाए, तभी एक उचित समन्वय पर पहुँच सकते हैं। नाना रीतियों, परम्पराओं, नाना प्रभेदों के बावजूद भी इस वैदिक संस्कृति के अन्दर एक ऐसी अमर एकता है, जो देश को शक्ति प्रदान करती है और उसे अक्षुण्ण रखती है। इसके लिए आधुनिक और प्राचीन दोनों का सम्मिश्रण अत्यन्त

गतांक से आगे...

एक दिन स्वामी जी के बाल बनाने को एक नाई आया। वह वृद्ध था स्वामी जी के बाल बहुत सख्त थे उससे क्षौर नहीं बनाई गई। स्वामी जी ने स्वयं उस्तरा लेकर उससे कहा कि इस तरह बनाओ और स्वयं ही दाढ़ी मूँछों को साफ कर लिया।

एक दिन एक सर्प डेरे के पास इमली के वृक्ष के ऊपर दिखाई दिया। उस पर स्वामी जी ने तान-तान कर पत्थर फेंके किन्तु वह नीचे नहीं गिरा, न मालूम ऊपर ही गायब हो गया।

जीवन सम्बन्धी घटनाएँ तो बहुत हैं। बहुत वर्षों की बात होने से याद न होने के कारण कुछ एक घटनाओं का वर्णन आप लोगों के समक्ष किया गया है।

जब स्वामी जी मसूदे में थे उन दिनों राव साहब मसूदा, पं. छगनलाल जी का पत्र-व्यवहार श्रीमान् राजाधिराज शाहपुरा-धीश से स्वामी जी का शाहपुरा पधारने के विषय में हो रहा था। अन्त में शाहपुरा पधारना निश्चित हो गया और वहाँ पधार गये। स्वामी जी को मसूदाधीश ने सिरोपाव नगद रुपये भेंट किये। स्वामी जी ने रुपये तो वहाँ पर ही जमा करा दिये जिसके विषय में कोठारी जी साहब सुजानसिंह जी अच्छी तरह से वाकिफ हैं।

स्वामी जी ने एक प्रमाणपत्र पं. छगनलाल जी को दिया जिसकी नकल मेरे पास है। मैंने स्वामी सत्यानन्द जी को दी और स्वामी श्रद्धानन्द जी को भी दी थी, वह छप भी गई है।

स्वामी जी शाहपुरा रह कर चित्तौड़ पधारे जहाँ लाट साहब का जलसा था। पीछे हिन्दुआं सूरज राणा सज्जनसिंह जी उदयपुर ले गये। उसके बाद जोधपुर गये जहाँ पर रोग ग्रस्त हुए और वहाँ से आबू पधारे, 63 वहाँ रोग बढ़ा जिसके समाचार पहले मौलवी मुरादअली जी साहब मालिक अखबार चिराग राजस्थान में छपा कि स्वामी जी आबू में बहुत बीमार हैं। यह खबर जब अजमेर के आर्य पुरुषों को मालूम हुई हम सबों ने निश्चय किया कि स्वामी जी को कोई सभासद् आबू जाकर अजमेर ले आवें। इस पर परम स्वामीभक्त भाई जेठमल जी सोढ़ा आबू गये और महाराज को अजमेर ले आये और राजा साहब भिनाय की कोठी में ठहराया गया। स्वामी जी बहुत कमजोर हो गये थे, शरीर में कई एक फोड़े हो गये थे। आबू से डाक्टर लक्ष्मण दास जी (जो महाराज के पूर्णभक्त थे) पहुँचाने को साथ आये। यहाँ के मुख्य डाक्टर सिविल सर्जन न्यूमन साहब और पूज्य वृद्ध हकीम निजामुद्दीन साहब नले वाले पीर जी ने महाराज को देखकर

मैंने ऋषि दयानन्द को देखा

● पं. नथमल तिवारी

विषप्रकोप का निदान निश्चित किया और यह कहा कि किसी ने हलाहल विष दिया है जो सारे शरीर में फैल गया है जो असाध्य है। ये समाचार लाहौर आदि स्थानों में पहुँचे। पंजाबी सज्जन महाराज के परमभक्त तुरन्त यहाँ पर पधार गये। उनमें से सब लोगों के नाम याद नहीं रहे। लाला साईदास जी, पं. गुरुदत्त जी, स्वामी उदयपुर से आत्मानन्द जी, जीवनदास जी आदि लाहौर के, पाण्ड्या मोहनलाल जी देहान्त के पीछे पं. सुन्दरलाल जी आदि बहुत से सज्जन आ गये। पहले से ही स्वामी जी के अजमेर पहुँचते ही तुरन्त सेवा में पहुँच गया था। दस्त और पेशाब के लिए पिडगियाँ कुम्हारों में से ले आया। उन्हें ले जाकर कमरे के पास दरवाजे के बगल में रख दिया। मैंने यही सेवा कबूल की कि महाराज को पेशाब पखाना कराकर बर्तनों को तुरन्त साफ कर रखना। दूसरे ही दिन अकस्मात् सहजानन्द नामक स्वामी आ गये और मुझ से बलात् यह सेवा स्वयं करने को कहा। जब तक यह महात्मा यहाँ पर रहे बराबर स्वामी जी की सेवा में तत्पर रहे। मैं भी प्रातः काल से रात्रि के 10 बजे तक उपस्थित रहता। महाराज के शरीर में छालों के अतिरिक्त हाड़फूटणी की तकलीफ भी रहती थी। पाँवों के पत्रों पर तीन-तीन चार-चार घण्टे तक अधर पलंग से बाहर दोनों पाँव करके मुझे अधर बैठा रखते। मेरा जीवन भी काफी था 19 या 20 वर्ष की आयु थी। तकलीफ इतनी ज्यादा थी परन्तु इतने दिनों में कभी भी मुख से हाय रे शब्द भी नहीं निकाला। शहर के प्रतिष्ठित एवं सभासदों से स्वस्थ पुरुष की तरह बोलते रहे।

एक दिन मैं पलंग के पास बैठा हुआ था, स्वामी जी ने आज्ञा दी कि स्वामी आत्मानन्द जी को बुलाओ जो दूसरे कमरे में थे, मैंने उन से कहा—“महाराज ! आपको स्वामी जी बुला रहे हैं।” वे तुरन्त सेवा में उपस्थित हुए। उन्हें अपने पास बैठने को कहा। उनके बैठने के उपरान्त एक साथ वाले आदमी को एक दुशाला लाने के लिए इशारा किया। उसने दुशाला लाकर पलंग पर रख दिया। स्वामी जी आत्मानन्द जी को देने लगे इस पर आत्मानन्द जी फूट-फूट कर रोने लगे और कहा कि महाराज मुझ को यह नहीं चाहिये। आप तो मेरे सिर पर हाथ रख दें और आशीर्वाद दें। अन्त में महाराज ने बहुत समझाया कि आप संन्यासी होकर इतना मोह करते

हैं, शरीर तो नाशवान् है। इसके लिए चिन्ता क्या करनी, ईश्वर की वेदवाणी का प्रचार करते रहो इत्यादि-इत्यादि। जब अन्त समय आया, दुर्भाग्यवश मैं उस समय घर पर आ गया था। पीछे मुझे 9 बजे रात्रि को मालूम हुआ कि स्वामी जी का स्वर्गवास हो गया। तुरन्त कोठी पर पहुँच गया। प्रातःकाल महाराज के शरीर को स्नान कराकर कपूर केसर मिश्रित चन्दन का सारे शरीर में लेप किया गया जिसकी बड़ी उत्तम गन्ध थी। शव के लिए बड़े-बड़े दो तख्तों को जोड़कर उन पर फरियाँ लगाई गई थीं। मैं और बाबू मथुराप्रसाद जी तथा पं. मातादीन जी बाजार से मलमल का थान, कस्तूरी 1 तोला लाये। थान को बाजार से गेरु के रंग में रंगा लाये। शव को तख्तों पर लिटाया चारों तरफ वस्त्र लपेटा गया। बीच में बांस के 4 डण्डे आरपार फँसाये गये ताकि 16 आदमी आसानी से उठा सकें। प्रातःकाल के समय एक मोटा ताजा संन्यासी आया और धूमधाम करने लगा कि स्वामी जी की लाश को हम ले जावेंगे और समाधि देंगे परन्तु गृहस्थियों को कभी दाह न करने देंगे क्योंकि साधु पर साधु का अधिकार है। पीछे से उस महात्मा को समझा बुझा कर बाहर निकाल दिया। पीछे स्वामी जी के शव को आठ-आठ आदमी उठाकर उस स्थान से शान्ति के साथ धीरे-धीरे आगरे दरवाजे तक पहुँचे। पुलिस के जमादार ने रथी को रोका कि मुर्दा लाश बाहर से शहर में नहीं ले जा सकते बाहर से ले जाओ। साथ में लालचन्द्र जी खत्री (जो पुलिस दफ्तर हैड क्लर्क थे) फौरन जमादार को रोका। पीछे पं. भागराम जी भी आ गये थे। हम सब लोग शव को नया बाजार, कडक्का चौक, धानमण्डी, दरगाह बाजार, नला बाजार, घसेटी बाजार, डिग्गी बाजार, ऊसरी दरवाजे होकर ऊंडा वाला (मलूसर) के श्मशान में पहुँचे। शव को उठाने में वीर सिक्ख भाइयों की बड़ी सहायता थी जिसका श्रेय मिस्त्री बसावासिंह जी को है क्योंकि लाश इतनी भारी थी कि मैंने और पण्डित मातादीन जी ने थोड़ी दूर तक कन्धा लगाया था जिससे एक महीने तक कंधे में दर्द होता रहा। यदि सिक्ख भाई हमारे सहायक न होते तो साधारण बाबू लोगों को बड़ी मुसीबत उठानी पड़ती। 16 जवान पंजाबी सिक्ख वीर अर्थी को श्मशान में ले गये। मार्ग में घण्टा घडियाल तथा शंख ध्वनि हो रही थी। श्मशान में पहुँचने पर वेदी खोदी गई, चिता चुनी गई, इसके बीच पण्डित

भागाराम जी जज ने ऐसा हृदयस्पर्शी भाषण दिया कि सब के सब 300 या 400 आदमियों के नेत्रों से अश्रुधारा बह चली जो कि रोकने पर भी नहीं रुकती थी। पश्चात् पं. सुन्दरलाल जी भी कुछ कहने उठे परन्तु गला रुक गया, धिग्गी बँध गई कुछ बोल न सके। वेदी तैयार होने पर शव को उस पर रखा गया और अग्निसंस्कार हुआ। केसर 30 या 40 तोला, कस्तूरी 1 तोला तो स्वामी जी के पास थी और 1 तोला हम ने खरीदी, इस प्रकार दो तोले। घृत 4 मन, बड़ पीपल की लकड़ियाँ 12 मन, चन्दन 2 मन, कपूर 5 सेर एकत्रित कर रखी थी। ब्रह्मचारी रामानन्द जी द्वारा अग्निसंस्कार होने पर सुगन्धित सामग्री की आहुतियाँ लगनी प्रारम्भ हुई, 5 घण्टे तक कृत्य होता रहा। तत्पश्चात् भाई जेठमल जी सोढ़ा ने चिता के ऊपर की लकड़ियाँ हटा कर शव को देखा तो लाश वैसी ही पड़ी रही। जो घृत सामग्री की आहुतियाँ दी जाती थी वह ऊपर ही उठ जाती थी उसका शव पर कुछ असर न होता था। भाई जेठमल जी द्वारा लाश के उलट पुलट किये जाने पर लाश का दाह हुआ। लाश को दग्ध कर 5 बजे सब आदमी अपने घर चले गये और 15 या 20 आदमी पीछे से आये। एक चौकीदार को रात्रि भर के लिये छोड़ दिया। 10 बजे हम घर पहुँचे।

दूसरे दिन स्वामी जी के सामान की फहरिश्त पं. मोहन लाल विष्णुलाल जी पाण्ड्या ने बनाई। मुझे मालूम नहीं कि वह सामान कहाँ ले जाया गया।

स्वामी जी अजमेर में 4 बार पधारे थे। पहली बार 1920 वि. में। साथ में कोई विशेष आडम्बर नहीं था केवल अकेले ही थे। उस समय पं. छगनलाल जी और उनके पिता पं. रामलाल जी, पं. शिवनारायण जी, महामहोपाध्याय पं. रामसुख जी व्यास आदि लोगों से परिचय हुआ। राय साहब बंसीलाल जी के बाग में (जो अब शारदा भवन के नाम से दौलत बाग के बाहर प्रसिद्ध है) उसमें ठहरे थे। पं. शिवनारायण जी के कहने से मालूम हुआ था कि स्वामी जी उन दिनों रुद्राक्ष का कण्ठा रखते थे। भागवत को भडुवा भागवत कहते थे और उसका खण्डन करते थे, जिससे पौराणिकों में खलबली मच गई थी। कुछ दिनों के पश्चात् जयपुर पधार गये थे ऐसा मैंने सुना था क्योंकि उन दिनों मेरा जन्म ही नहीं हुआ था।

दूसरी बार स्वामी जी सं. 1935 वि. में कार्तिक मास में पधारे। उस समय आनासागर पर सेठ रामप्रसाद जी करणीदान जी के बाग में ठहरे थे। उस समय स्वामी जी के भक्तों ने बड़े

पृष्ठ 04 का शेष

पदवाक्यप्रमाणज्ञ ...

छात्रों से कराते थे। वे कर्मकाण्डीय विधियों पर सूक्ष्म दृष्टि रखते थे, स्वल्प त्रुटि होते ही टोक देते थे। महात्मा प्रभु आश्रित जी और उनकी भक्त—मण्डली को भी शास्त्रीय रीतियों एवं मर्यादाओं से अवगत कराया। अजमेर के प्रसिद्ध आर्य पुरुष हकीम वीरूमल आर्यप्रेमी जी के पारिवारिक यज्ञ में भी उन्हें शास्त्रीय विधि—विधान समझाया, फलतः आप दोनों

पृष्ठ 05 का शेष

उत्पत्ति का विज्ञान ...

प्राण शक्ति किसी कोश में सूक्ष्मरूप में विद्यमान रहती थी। एक बार ऋषि दयानन्द ने घोड़े की सवारी को रोक लिया थे, ऋषि दयानन्द की घंटों की समाधि होती थी, वे अपनी शक्तियों को वेदों के सत्यार्थ प्रकट करने तथा देश और समाज से कुरी तियों, कुसंस्कारों को दूर करने में लगाते थे।

अभी भी इस साधु—सन्तों की भारत भूमि में ऐसे—ऐसे योगी महापुरुष हैं जो ध्यान योग की शक्ति से त्राटक द्वारा, स्पर्श द्वारा रोगियों को रोग से मुक्त कर देते हैं, यज्ञों से भी लाभ है।

महाभारत और रामायण के पूर्वकाल से आर्यावर्त में आर्य लोगों की मातृभाषा

ने अपने विधियों में परिवर्तन कर लिया। दयानन्दनिष्ठ दृष्टि व मान्यताएँ अलूनी शिला को आजीवन चाटना—पूज्य गुरुजी छात्रों से प्रायः कहा करते थे—‘शास्त्र अलूनीशिला है, जिसे जीवनभर चाटना है, इसमें कोई रस नहीं है, कोई आकर्षण नहीं है। जिसको यह स्वीकार हो, वह इस मार्ग में प्रवृत्त हो, हमारे साथ रहे।’ गुरुजी की यह हार्दिक अभीप्सा थी कि ‘हमने वेदांगों, मुख्यतः व्याकरण और निरुक्त के अध्ययन के आर्ष मार्ग को

संस्कृत थी, उसी भाषा में सब व्यवहार करते थे। उस समय ऋषियों की वाणी को ही सत्य समझा जाता था। उस समय ‘जल, वायु आदि में प्रदूषण नहीं था।

ऋषि व्यास देव दीर्घ जीवी थे। उनका जन्म भी भीष्म जी के जन्म से 10—12 वर्ष बाद हुआ था। भारत युद्ध के समय भीष्म जी कोई 170 वर्ष के थे, तब व्यास जी लगभग 160 वर्ष के होंगे। पुनः युधिष्ठिर राज्य 36 वर्ष तक रहा। तत्पश्चात—परीक्षित ने 24 वर्ष तक राज्य किया, उस समय ऋषि व्यास 220 वर्ष के थे। पुनः जनमेजय तक उनकी आयु 250 वर्ष से अधिक थी। वेदान्त दर्शन, के निर्माता और महाभारत के भी रचयिता परम ऋषि व्यासदेव जी थे। किन्तु आधुनिक पाश्चात्य विद्वान् इस

प्रशस्त किया,’ अब हार्दिक इच्छा है कि कोई वेद के उपांगों (दर्शन) के अध्ययन के आर्ष मार्ग को प्रशस्त करे। गुरुजी अपने शिष्यों से उनके जीवनोद्देश्यों में यह अपेक्षा रखते थे—‘तुम्हारा ऋषि दयानन्द प्रदर्शित आर्ष पाठविधि ही मुख्योद्देश्य आजीवन होगा। ऋषि दयानन्द वर्जित किसी ग्रन्थ को नहीं पढ़ाना। हर विषय में ऋषि दयानन्दाभिमत समाधान तुम्हारा उद्देश्य होगा, जिस बात का समाधान समझ में न आये चुप रहें, प्रयत्न करें, दस वर्ष पीछे भी समझ में आ सकता है।

बात को कदाचित अभी न समझ सके, इसमें हमारे ऋषियों का दोष नहीं है। वैदिक वाङ्मय के इतिहास में लिखा है कि “आर्यलोग कृतयुग के आरम्भ से भारत वर्ष में रहते थे। महाभारत सिद्ध करता है कि योरोप की सम्पूर्ण वर्तमान जातियाँ दैत और दानवों की सन्तान में हैं। महाभारत सारे योरोप पर कभी संस्कृत का साम्राज्य मानता है। महाभारत साक्ष्य देता है कि जब से वेद था तभी से लोक भाषा संस्कृत भी संसार में प्रचलित थी। महाभारत आर्य राजाओं के वंश क्रम को सुरक्षित रख कर सत्य इतिहास का परिचय देता है इसलिये यहूदी और ईसाई घोर पक्षपाती लेखकों को महाभारत के विरुद्ध एक चिड़ थी। इसलिये मोनियर विलियम्स के काल (सन् 1876) से

मार्जन रखें किन्तु अधीर होकर ऋषि को कभी गलत न कहना’ गुरुजी का यह दृढ़ विश्वास था—‘जब भारत में यह समझा जायेगा कि जिसने संस्कृत नहीं पढ़ी वह भारतीय ही नहीं है, तब लोग अनिवार्यता से संस्कृत पढ़ने लगेंगे। यह अवस्था अष्टाध्यायी—पद्धति से ही हो सकती है, इसी परिणाम पर सभी पहुँचेंगे।’

क्रमशः

अध्यापक आवास, स्टेशन रोड,
अमेठी (उ.प्र.)—227405

लेकर विण्टरनिट्स के काल (सन् 1927) तक अनेक पाश्चात्य लोगों ने महाभारत की ऐतिहासिकता और उसके व्यास रचित होने के विरुद्ध एक आँधी चलाई। पर अंग्रेजी द्वारा संस्कृत पढ़े हुए दो—चार ब्रिटिश सरकार के वेतन भोगी अध्यापकों के अतिरिक्त संस्कृतज्ञों ने उनकी कल्पना की पूरी अवहेलना की।”

यदि ऐसा न हुआ होता तो महाभारत काल को भी विदेशी लोग जंगली अथवा काल्पनिक की संज्ञा दे देते।

क्रमशः

मु. पो. मुरारई, जिला—वीरभूम
(पश्चिम बंगाल)

पृष्ठ 06 का शेष

गीता और महर्षि ...

में न फँसना, शौर्य, तेज, धृति, दक्षता, युद्ध में न हटना, तथा आवश्यकता पड़ने पर भागना भी, दान और ईश्वर भाव, इनके अर्थ और व्याख्या करके ऋषि ने लिखा—ये ग्यारह क्षत्रिय वर्ग के कर्म और गुण हैं।

सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि के लेख से स्पष्ट है कि—गीता के श्लोक बिना लिखे ब्राह्मण वर्ण के पन्द्रह गुण कर्म स्वभाव नहीं बनते हैं और ऋषि लिखते हैं कि— ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्यों में इन पन्द्रह गुण कर्मों का होना आवश्यक है।

इसी प्रकार क्षत्रिय के गुण कर्मों में गीता का श्लोक न रखा जाए तो क्षत्रिय के गुण कर्म ग्यारह नहीं बन सकते, इससे यहाँ तो सर्व प्रकार यह सिद्ध

और स्पष्ट है कि—गीता को ऋषि ने नहीं माना किन्तु परमावश्यक और परम उपादेय माना है। यहाँ तो गीता की महत्ता और माननीयता सिद्ध हो रही है, गीता का शत्रु कोई बतावे कि ब्राह्मण के गुण कर्म स्वभाव पन्द्रह—जिनका होना ब्राह्मण वर्णस्थ मनुष्यों में ऋषि ने आवश्यक बताया है वे गीता के श्लोक के बिना पूरे किस प्रकार हो सकते हैं और क्षत्रिय के गुण कर्म स्वभाव—जिनका क्षत्रिय वर्णस्थ

मनुष्यों में होना आवश्यक है वह गीता के श्लोक के बिना ग्यारह किस प्रकार होंगे? इससे सिद्ध और स्पष्ट है कि उनकी कल्पना सर्वथा उलटी है।

क्रमशः

शास्त्रार्थ—महारथी अमर स्वामी ग्रन्थ संग्रह’ में सकलित ‘गीता और महर्षि दयानन्द’ से साभार
(सम्पादक—डॉ. ज्वलन्त शास्त्री)

पृष्ठ 07 का शेष

मानव-निर्माण में ...

आवश्यक है। अतीत के अनुभवों से हम सीखते हैं, उज्ज्वल भविष्य के लिए योजना करते हैं, पर जीना तो वर्तमान

में ही है। कोई वस्तु इसलिए अच्छी नहीं कि पुरानी है और नया आविष्कार होना कोई बुराई नहीं है। उभयविध का मूल्यांकन करके सार— उपादेयता को ग्रहण करना चाहिए। केवल मूर्ख लोग दूसरों के विश्वास पर चलते हैं। नया

हो या पुराना, पूर्व हो या पश्चिम, यह हमारी परम्परा है। इस परम्परा को हमें जीवित रखना है। महाकवि कालिदास लिखते हैं—

पुराणमित्येव न साधु सर्वं
न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्।

सन्तः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते

मूढः पर प्रत्ययनेयबुद्धिः।।

(मालविकानमित्रम्)

क्रमशः

खालसा महाविद्यालय दिल्ली विश्वविद्यालय

पृष्ठ 08 का शेष

मैने ऋषि दयानन्द ...

आदर के साथ स्वागत किया। व्याख्यान गजमल जी की हवेली में हुआ करते थे, जिसका प्रबन्ध सरदार भगतसिंह व पं. भागराम जी करते थे। 15 या 20 व्याख्यान हुए, शंका—समाधान भी होते

थे। पौराणिक लोगों में शास्त्रार्थ की चर्चा भी होती रहती थी परन्तु सिंह के सामने गीदड़ों की कहाँ हिम्मत! इसी तरह शान्तिपूर्वक गुजरती रही, मैं भी स्वामी जी के 4 या 5 व्याख्यान में गया परन्तु विषय गम्भीर होने से समझने की योग्यता न थी क्योंकि मेरी आयु 13 या 14 वर्ष की थी। मेरे मन पर व्याख्यानों

का कोई असर न हुआ, फिर स्वामी जी पधार गये। तीसरी बार सन् 1938 वि. में पधारे जिसका वृत्तान्त पहले वर्णन किया गया है।

चौथी बार महाराज का अन्तिम बार पधारना था जहाँ उन्होंने निर्वाण पद प्राप्त किया।

उपरोक्त स्वामी जी के जीवन सम्बन्धी घटनाएँ याद करके लिखी गई हैं। तारीख वार क्रमशः नहीं लिखी गई हैं संग्रह रूप समर्पण करता हूँ।

सम्पादक—डॉ. भवानीलाल भारतीय
परोपकारी, अगस्त 1986
श्रावण 2043 वि.



पत्र/कविता

ईश्वर का नाम-स्मरण

किसी एक वैरागी के दो चेले थे। वे प्रतिदिन गुरु के पग दबाया करते थे। एक ने दाहिने पग और दूसरे ने बायें पग की सेवा करना बाँट लिया था। एक दिन एक चेला कहीं गया था और दूसरा अपने सेव्य पग की सेवा कर रहा था। इतने में गुरु ने करवट फेरी तो उसके पग पर दूसरे गुरुभाई का सेव्य पग पड़ा। उसने ले डण्डा पग पर धर मारा। गुरु ने कहा – ‘अरे दुष्ट ! तूने यह क्या किया ?’ चेला बोला – ‘मेरे सेव्य पग के ऊपर यह पग क्यों आ चढ़ा ?’ इतने में दूसरा चेला आया। वह भी अपने सेव्य पग की सेवा करने लगा। देखा तो पग सूजा पड़ा है। गुरु से पूछा-‘यह मेरे सेव्य पग में क्या हुआ ?’ गुरु ने सब वृत्तान्त सुना दिया। वह भी मूर्ख न बोला – न चाला। चुपचाप डण्डा उठाकर बड़े बल से गुरु के दूसरे पग में मारा। तो गुरु ने उच्च स्वर से पुकार मचाई। तब तो दोनों चेले डण्डा लेके गुरु के पगों को पीटने लगे। तब तो बड़ा कोलाहल मचा और लोग सुनकर आये। उनमें से किसी बुद्धिमान् पुरुष ने साधु को छुड़ाया। पश्चात् उन दोनों मूर्ख चेलों को उपदेश किया कि – ‘देखो, ये दोनों पग तुम्हारे गुरु के हैं। उन दोनों की सेवा करने से उसी को सुख और दुःख देने से उसी एक को दुःख होता है।’

जैसे एक गुरु की सेवा में चेलों ने लीला की, इसी प्रकार जो एक अखण्ड, सच्चिदानन्द-अनन्त-स्वरूप

कंकर में कैलाश हुआ करती है माँ

बंजर में मधुमास हुआ करती है माँ।
संसृति का उल्लास हुआ करती है माँ।।
मत बाँटो दानव बनकर भूगोलों में,
देवों का इतिहास हुआ करती है माँ।।

देना केवल देना जिसका लक्ष्य रहे,
विष में भी विश्वास हुआ करती है माँ।
कुचली जाने पर भी सुरभित करती है,
नन्दन वन की घास हुआ करती है माँ।

खिला-पिला बच्चों को भूखी रह जाती,
व्रत-पूजन उपवास हुआ करती है माँ।
सदा हर्ष वर्धन करती सन्तानों का,
नित पुरुषोत्तम मास हुआ करती है माँ।

खो जाने पर ही कीमत का पता चले,
आम दिखे पर खास हुआ करती है माँ।
प्रज्ञा पारमिता परमेश्वर से कम क्या,
साँस-साँस अरदास हुआ करती है माँ।

संस्कारों की तुलसी बोती जीवन में,
ऋत सत्यार्थप्रकाश हुआ करती है माँ।
संन्यासी के तप से बढ़कर तप इसका,
घर में भी बनवास हुआ करती है माँ।

फूल भरे असमय तो ज्यादा दुख होता,
खुशबू का अहसास हुआ करती है माँ।
शोलों में भी ओलों जैसी ठंडक दे,
तृप्तिदायिनी प्यास हुआ करती है माँ।

माँ के चरण आचरण के पर्याय रहे,
धरती पर आकाश हुआ करती है माँ।
स्वर्ग छुपा होता है माँ के पैरों में,
सुख का सतत विकास हुआ करती है माँ।

सिर पर हाथ घरे लोहा सोना कर दे,
वरदानी संन्यास हुआ करती है माँ।
मात-पिता को रखा सदा सिर-आँखों पर,
सबके मुक्ति प्रयास हुआ करती है माँ।

वह घर दूध-पूत अन-धन से भरा रहे,
जिस घर में न उदास हुआ करती है माँ।
सदा शीश आशीष ‘मनीषी’ बना रहे,
कंकर में कैलाश हुआ करती है माँ।

प्रो. डॉ सारस्वत मोहन ‘मनीषी’
डी-801, बैस्टेक पार्क व्यू संस्कृति एपार्टमेंट,
सैक्टर -92, नया गुरुग्राम हरियाणा-122505
मो. 9810835335

परमात्मा के विष्णु, रुद्रादि अनेक नाम हैं, इन नामों का अर्थ जैसा कि (सत्यार्थ-प्रकाश के) प्रथम समुल्लास में प्रकाश कर आये हैं, उस सत्यार्थ को न जानकर शैव, शाक्त, वैष्णवादि सम्प्रदायी लोग परस्पर एक दूसरे के नाम की निन्दा करते हैं। मन्दमति तनिक भी अपनी बुद्धि को फैला कर

नहीं विचारते हैं कि ये सब विष्णु, रुद्र, शिव आदि नाम एक अद्वितीय, सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी, जगदीश्वर के अनेक गुण-कर्म-स्वभावयुक्त होने से उसी के वाचक हैं। भला, क्या ऐसे लोगों पर ईश्वर का कोप न होता होगा ?

नामस्मरण इसको कहते हैं कि

– यस्य नाम महद्दशः। (यजुर्वेद 32.3)

परमेश्वर का नाम बड़े यश अर्थात् धर्मयुक्त कामों का करना है। जैसे ब्रह्म, परमेश्वर, ईश्वर, न्यायकारी, दयालु, सर्वशक्तिमान् आदि नाम परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव से हैं। जैसे ब्रह्म = सबसे बड़ा, परमेश्वर = ईश्वरों का ईश्वर, ईश्वर = सामर्थ्ययुक्त, न्यायकारी = कभी अन्याय नहीं करता, दयालु = सब पर कृपादृष्टि रखता, सर्वशक्तिमान् = अपने सामर्थ्य से ही सब जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय करता, सहाय किसी का नहीं लेता, ब्रह्मा = विविध जगत् के पदार्थों का बनानेवाला, विष्णु = सबमें व्यापक होकर रक्षा करता, महादेव = सब देवों का देव, रुद्र = प्रलय करनेवाला आदि नामों के अर्थों को अपने में धारण करे अर्थात् बड़े कामों से बड़ा हो, समर्थों में समर्थ हो, सामर्थ्यों को बढ़ाता जाए, अधर्म कभी न करे, सब पर दया रखे, सब प्रकार के साधनों में समर्थ हो, शिल्प-विद्या से नाना प्रकार के पदार्थों को बनावे, सब संसार में अपने आत्मा के तुल्य सुख-दुःख समझे, सबकी रक्षा करे, विद्वानों में विद्वान् होवे, दुष्ट कर्म करने वालों को प्रयत्न से दण्ड देवे और सज्जनों की रक्षा करे। इस प्रकार परमेश्वर के नामों का अर्थ जानकर परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल अपने गुण-कर्म-स्वभाव को करते जाना ही परमेश्वर का नामस्मरण है।

मधुमेह

दूषित जीवन शैली से मधुमेह जैसी बीमारियाँ अब विश्व के समस्त नागरिकों को अपनी गिरफ्त में तेज़ी से लपेट रही हैं जो अत्यन्त घातक है।

आयुर्वेद के विशेषज्ञों के अनुसार यदि मधुमेह से बचने का प्रयास किया जाये तो मधुमेह पर विजय पायी जा सकती है।

प्रातः सूर्य नमस्कार को जीवन शैली में शामिल करें।

सायं काल का भोजन सूर्य छिपने से पहले करें। जिससे गुरुत्वाकर्षण शक्ति आपके भोजन को पचाने में सहयोग करे।

आयुर्वेद विशेषज्ञों के अनुसार बिजी सा-उप, इस मधुनाशनी वटी, आरोग्य वर्धक वटी, चन्द्रप्रभावटी त्रिवांग भस्म, गिलोय वटी का सेवन सहायक हो सकता है।

आयुर्वेद चित्सिक का परामर्श श्रेष्ठ लाभ देगा।

कृष्ण मोहन गोयल
113 बाजार कोट, अमरोहा